विशेष लेख -दूसरा भाग

ट्यूनीशिया, मिस्र और अरब जगत में भूचाल

एजाज अहमद विश्वप्रसिद्ध मार्क्सवादी विचारक एवं समाजशास्त्री हैं। उनका यह लेख **'ऑटम ऑफ पेट्रियार्क'** शीर्षक से **'फ्रंटलाइन'** के फरवरी अंक में प्रकाशित हुआ था। उसे **'देश–विदेश'** ने हिंदी में प्रकाशित किया है। लेख का अनुवाद **ज्ञानेन्द्र** ने किया है। चूंकि हिंदी पाठकों तक इस महत्त्वपूर्ण लेख का अधिक से अधिक प्रसार हो सके, इसलिए हम 'फ्रंटलाइन' और 'देश–विदेश' के प्रति आभार प्रकट करते हुए इस लेख के सबसे महत्त्वपूर्ण अंशों को प्रकाशित कर रहे हैं।

एजाज अहमद विश्वप्रसिद्ध मार्क्सवादी विचारक एवं समाजशास्त्री हैं। उनका यह लेख 'ऑटम ऑफ पेट्रियार्क' शीर्षक से 'फ्रंटलाइन' के फ़रवरी अंक में प्रकाशित हुआ था। उसे 'देश-विदेश' ने हिंदी में प्रकाशित किया है। लेख का अनुवाद ज्ञानेन्द्र ने किया है। चूंकि हिंदी पाठकों तक इस महत्त्वपूर्ण लेख का अधिक से अधिक प्रसार हो सके, इसलिए हम 'फ्रंटलाइन' और 'देश-विदेश' के प्रति आभार प्रकट करते हुए इस लेख के सबसे महत्त्वपूर्ण अंशों को प्रकाशित कर रहे हैं।

आंदोलन की धुरी – मिस्र

ट्यूनीशिया जैसे एक परिधि पर स्थित राष्ट्र में लोकतंत्रीकरण की यह मांग कहीं ज़्यादा आसानी से मानी जा सकती है और जब वहां एक पूरी तरह लोकतांत्रिक राजनीतिक व्यवस्था कायम हो जायेगी, तभी सामाजिक-आर्थिक न्याय के लिए संघर्ष शुरू हो पायेगा। लेकिन मिस्र? 1952 से ही पूरे अरब जगत की तकदीर मिस्र के साथ जुड़ी रही है। लंबे समय तक काहिरा शहर विभिन्न देशों के अरब विद्वानों और कलाकारों का गढ़ बना रहा। आबादी के लिहाज से मिस्र अरब जगत का आधा है। नासिरवादियों द्वारा राजशाही को उखाड़ फेंके जाने के बाद अरब जगत में सिलसिलेवार राजशाही-विरोधी क्रांतियों के लिए रास्ता साफ़ हो गया। मिस्र से ही वहां एक देश से दूसरे देश तक धर्मनिरपेक्ष अरब राष्ट्रवाद फैला जब गमाल नासिर इस तरह के राष्ट्रवाद के प्रतीक बन गये। इसी के विपरीत, आधुनिक इस्लामवाद भी मिस्र से ही पूरे अरब जगत में फैला। सऊदी अरब तो बाद में जाकर इसका प्रमुख केंद्र बना। 1968 में अरब सेनाओं की हार के चलते नहीं, बल्कि उसके बाद अनवर सादात द्वारा इजराइल से शांति और संश्रय संधि करने तथा मुबारक द्वारा उसे पूरी तरह लागू किये जाने के कारण ही पूरे अरब जगत में फिलीस्तीनी संघर्ष को सबसे बड़ा धक्का पहुंचा। मिस्र का इजराइल के साथ नजदीकी सहयोग पूरे इलाके में इजराइली प्रभुत्व की गारंटी करने वाली धुरी की कील है और अमेरिका ने इजराइल के बाद मिस्र की सेना में ही सबसे ज़्यादा पैसा लगाया है।

क्या अमेरिका हालात को अपने हाथों से यूं ही निकल जाने देगा और क्या मिस्र में स्थिति को फ़िर से अपने काबू में करने के लिए उसके पास पर्याप्त आंतरिक ताकत – सुरक्षा प्रतिष्ठान, सेना और मिस्र के कारपोरेट धनाढ्य वहां मौजूद नहीं हैं? यह तो वक्त ही बतायेगा। सारत: अमेरिका के आगे अब एक विकल्प तो यह है कि वह मुबारक और उसके करीबियों के प्रस्थान की व्यवस्था करे और एक नियंत्रित लोकतांत्रिक प्रक्रिया की अनुमति दे जिसमें अलबरदेई जैसा विश्वासपात्र इस संक्रमण की कमान संभाले और यह उम्मीद करे कि इस छत्रछाया में होने वाले चुनावों में मुख्यत: उदारवादियों और मुद्राकोष को चाहने वाले अभिजातों की जीत हो, भले ही मुस्लिम ब्रदरहुड संगठन कुल वोटों का एक महत्त्वपूर्ण हिस्सा हासिल कर ले। यही वह परिणाम है जिसकी आकांक्षा अधिकांश प्रदर्शनकारियों – ट्विटर क्रांतिकरियों से लेकर ब्रदरहुड तक के मन में है। अमेरिका के लिए दूसरा विकल्प यह है कि वह दोमुंही बातें करे। सेना के बल प्रयोग की अनदेखी करे, बल्कि उसे न्यायसंगत ठहराने के लिए सड़कों पर पर्याप्त संख्या में हिंसक झड़पों को उकसाये और इस तरह मुबारक के रहते या उसके बिना भी मुबारकशाही को स्थायित्व प्रदान करे और फ़िर इसके साथ-साथ हिंसा की सार्वजनिक निंदा का शोर मचाये और दोषियों को सजा देने की मांग करे। इजराइली खास तौर पर बाद वाले विकल्प को पसंद करेंगे और वे पहले ही अमेरिका, ब्रिटेन और अन्य देशों में अपने यहूदीवादी धड़े को ओबामा पर दबाव बनाने के लिए गोलबंद कर चुके हैं। मुबारक की तारीफ़ में इजराइल के प्रधानमंत्री बेंजामिन नेतन्याहू ही सबसे ज़्यादा कसीदे पढ़ते दिखाई पड़ रहे हैं या फ़िर टॉनी ब्लेयर, जिसके बारे में किसी ने ठीक ही कहा है कि वह एक अमेरिकी है जिसे ब्रिटेन ने कभी प्रधानमंत्री बना लिया था।

हम नहीं जानते कि वाशिंगटन में ठीक-ठीक क्या खिचड़ी पक रही है, लेकिन घटनाक्रम में आया सबसे ताजा मोड़ अनिष्ट-सूचक है। प्रदर्शनकारियों के खिलाफ़ हिंसा दिन-ब-दिन बढ़ती जा रही है। हिंसक दमन के पहले सेना के प्रवक्ता ने लोकतंत्र समर्थकों को घर लौटने और 'सामान्य जीवन' बहाल करने की सलाह दी थी। मिस्र के जिस सबसे बदनाम खुफ़िया सरगना और आतंक का सरदार उमर सुलेमान को विरोध-प्रदर्शनों के विराट रूप धारण करने के बाद मुबारक ने उप राष्ट्रपति बना दिया था, उसने प्रदर्शनकारियों पर हिंसक दमन बढ़ाये जाने के बाद कहा था कि कि अब प्रदर्शनों का अंत होना जरूरी है। सुलेमान की कमान में लगभग 10 लाख आंतरिक सुरक्षा बल हैं और वह सबसे खूंखार जिंदा लोगों में से एक है।

इस लेख में सुलेमान के बारे में हम आगे चर्चा करेंगे। वाशिंगटन में मिस्र के बारे में जिस विकल्प पर विचार किया जा रहा है, इसकी ओर संकेत करने वाला वाला एक अच्छा लक्षण 29 जनवरी को प्रकट हुआ जब "मिस्र के बारे में निष्पक्ष कार्य-दल" के नाम से नीतिगत सिफ़ारिशों के बारे में एक वक्तव्य जारी हुआ। यह कार्य-दल खुद को "कार्नेगी, विदेशी मामले की परिषद्, ह्यूमन राइट वाच, अमेरिका की प्रगति के लिए केंद्र, निकट-पूर्व इलाके में नीतियों के लिए वाशिंगटन इंस्टीच्यूट, विदेश नीति पहल और फ्रीडम हाऊस जैसी संस्थाओं से नीति विशेषज्ञों का समूह" बताता है। स्पष्ट है कि यह अमेरिका के विदेश नीति प्रतिष्ठान और साथ ही लोकतंत्र प्रोत्साहन से जुड़े अभिजातों का समूह है। इसकी सिफ़ारिशें इस प्रकार थीं।

केवल स्वतंत्र और निष्पक्ष चुनाव ही मिस्र की जनता द्वारा वैध ठहराई गई सरकार के हाथों में सत्ता के शांतिपूर्ण संक्रमण का जरिया बन सकते हैं। हम ओबामा से अनुरोध करते हैं कि वे आने वाले दिनों में इन बुनियादी उद्देश्यों के लिए प्रयास करें और मिस्र की सरकार पर दबाव डालें कि वह –

0 संसद और राष्ट्रपति पद के लिए जल्दी से जल्दी चुनावों की घोषणा करे।

0 मिस्र के संविधान में संशोधन करके विपक्षी दलों के उम्मीदवारों को भी राष्ट्रपति चुनाव में भाग लेने का मौका दे।

0 इमरजेंसी तत्काल उठा ली जाये।

0 घरेलू चुनाव मॉनीटरों को हिंसा या कारावास के भय से मुक्त रहते हुए पूरे देश में काम करने की अनुमति दी जाये।

0 अंतरराष्ट्रीय मॉनीटरों को तुरंत देश में आने ओर चुनाव तैयारी की कार्यवाही को मॉनीटर करने के लिए निमंत्रित किया जाये और वे सरकार द्वारा इस दिशा में उठाये कदमों के बारे में अंतराष्ट्रीय समुदाय को रिपोर्ट करें।

0 सार्वजनिक तौर पर यह घोषणा कर दी जाये कि मुबारक महोदय फ़िर चुनाव में हिस्सा नहीं लेंगे।

0 हमारी सिफ़ारिश यह भी है कि जब तक मिस्र की सरकार इन उपायों को स्वीकार नहीं करती और उन्हें लागू करने के लिए कदम नहीं उठाती, तब तक के लिए ओबामा प्रशासन मिस्र को दी जाने वाली तमाम आर्थिक और सैनिक सहायता रोक दे।

दरअसल, इस पैरा का अंतिम वाक्य साफ़ तौर पर एक सजावटी वाक्य है और कुल मिला कर यह पूरी चीज इस दावेदारी के समर्थन में जन संपर्क की कवायद का हिस्सा है कि अमेरिकी सत्ता-प्रतिष्ठान दरअसल लोकतांत्रिक आंदोलन के पक्ष में था। महत्त्वपूर्ण बात यह है कि इन सिफ़ारशों में मुबारक के इस्तीफ़े और चुनाव संपन्न कराने के लिए लोकतांत्रिक शक्तियों को शामिल करते हुए एक संक्रमणकालीन सरकार गठित करने की मांग नहीं है। 'स्वतंत्र और निष्पक्ष' चुनाव खुद मुबारक की सत्ता के अधीन ही करवाये जाने थे।

ट्यूनीशिया से शुभारंभ : पूरे घटनाक्रम की शुरुआत 17 दिसंबर को मध्य ट्यूनीशिया के एक छोटे से कस्बे सीदी बोजिद की एक छोटी-सी स्थानीय घटना से हुई जब 26 साल के एक बेरोज़गार स्नातक ने पुलिस के दुर्व्यवहार से तंग आ कर आत्महत्या के प्रयास में खुद को आग लगा ली। कुछ दिनों के बाद उसकी मौत हो गई। इसके बाद भड़के विरोध-प्रदर्शनों के बीच एक 22 साल के नौजवान हुसेन फाल्ही ने यह नारा लगाते हुए कि 'अब और कंगाली नहीं, और बेरोज़गारी नहीं' बिजली का तार पकड़ कर अपनी जीवन लीला समाप्त कर दी। जल्दी ही विरोध-प्रदर्शन आस-पास के कस्बों और इलाकों में फैल गये और ट्यूनीशिया में में 1000 लोगों ने जुलूस निकाला। दूसरी ओर ट्यूनीशिया, अल्जीरिया, मिस्र और मैरिटानिया में बेरोज़गारी की ऊंची दर तथा खाद्य पदार्थों और तेल की बढ़ती महंगाई के विरोध-स्वरूप आत्महत्याओं का सिलसिला जारी रहा जिसने अंतरराष्ट्रीय मुद्रा कोष निर्देशित नीतियों और प्रक्रियाओं की शिकार अधिकांश आबादी के गुस्से की आग में घी का काम किया।

दिसंबर के अंत तक ये विरोध-प्रदर्शन एक असली वगावत का रूप ले चुके थे जिसमें जीवन के सभी क्षेत्रों से जुड़े लोग – टेड यूनियनें, प्रतिबंधित राजनीतिक पार्टियां और समूह, वकीलों के संघ, कलाकार, गायक और अन्य बहुत से लोग रोज-रोज के प्रदर्शनों में भाग ले रहे थे। इसके जवाब में पुलिस ने बर्बर दमन-चक्र चलाया और गोलीबारी की। 14 जनवरी को सेना ने हस्तक्षेप करके तानाशाह को सुरक्षित शरणस्थल सऊदी अरब के लिए प्रस्थान करने में सहायता की और फ़िर पुलिसिया दमन से आम लोगों को बचाने के लिए बीच-बचाव किया। लेकिन इससे पहले 66 लोग पुलिस की गोली का शिकार बन चुके थे।

ट्यूनीशिया और अन्य देशों में हुई इन घटनाओं की सबसे चौंकाने वाली अभिलाक्षिणिकता यह है कि भले ही वे आत्महत्यायें और शुरुआती जन-प्रदर्शन की घटनायें सीधे आर्थिक मुद्दों पर केंद्रित थीं, लेकिन बाद में जब बड़े शहरों और राजधानी में आंदोलन फैल गया और उसका नेतृत्व शोषण-उत्पीड़न की शिकार जनता के हाथ से निकल कर महानगरीय मध्य वर्ग के हाथ में आ गया तो आंदोलन अपने शुरुआती लक्ष्य से भटक गया और इसके मुद्दे बदल कर तानाशही, भ्रष्ट शासन और मनवाधिकार हनन के खिलाफ़ केंद्रित कर दिये गये। ट्यूनिश और काहिरा में हुए विरोध-प्रदर्शनों की सबसे उल्लेखनीय बात यह थी कि उनमें उदारवादी नीतियों, राष्ट्रीय अर्थव्यवस्था में साम्राज्यवादी घुसपैठ और वाशिंगटन स्थित अंतरराष्ट्रीय वित्तीय संस्थाओं के खिलाफ़ मांगों, नारों और बैनरों का लगभग पूरी तरह अभाव था।

इस मोड़ पर थोड़ा इतिहास जान लेना उपयोगी होगा। ट्यूनीशिया में पहला 'रोटी के लिए दंगा' 1984 में उस वक्त भड़का था जब ब्रेड के दामों में 100 प्रतिशत की बढ़ोत्तरी की गई थी। ब्रेड की कीमतों में यह बढ़ोत्तरी और साथ ही खाद्य सब्सिडी को पूरी तरह खत्म करना अंतरराष्ट्रीय मुद्रा कोष से लिए गये कर्ज के बदले देश पर थोपे गये ढांचागत समायोजन कार्यक्रम का अंग था। उस समय पुलिस द्वारा गोली चलाये जाने से 50 लोग मारे गये थे। फ्रांसीसी गुलामी से ट्यूनीश्या की मुक्ति की लड़ाई के नेता हबीब बुरगीबा उस समय सत्ता में थे। उन्होंने बढ़ी हुई कीमतें वापस ले ली, गोलीबारी का आदेश देने वाले अपने गृह मंत्री को बर्खास्त कर दिया और ढांचागत समायोजन कार्यक्रम की शर्तों को मानने से इन्कार कर दिया। तीन साल बाद जनरल जइन अल आबिदीन बेन अली ने एक तख्तापलट करके हबीब को हटा दिया और इस तरह सार्वजनिक संपत्ति के निजीकरण तथा मुद्रा कोष की शर्तों को निर्ममतापूर्वक थोपने के लिए रास्ता साफ़ कर दिया। कुछ महीनों के भीतर ही मुद्रा कोष के साथ एक बड़ा समझौता किया गया और यूरोपीय संघ के साथ समानांतर मुक्त व्यापार का मार्ग प्रशस्त कर दिया और देश को यूरोपीय पूंजी के लिए सस्ती श्रमशक्ति के भंडार में बदल दिया गया।

इन समझौतों के तुरंत बाद निजीकरण की भयावह लहर उठी जो बेन अली, उसके परिवार और उसकी पत्नी के लिए पूंजी संचय का प्रमुख स्रोत बन गई। बेन की पत्नी पहले एक हेयर ड्रेसर थी जो हाल में, अपने पति के सऊदी अरब में भाग कर शरण लेने से पहले ही सरकारी खजाने से कई टन सोना लेकर अबुधाबी के लिए पलायन कर चुकी थी। विकीलीक्स द्वारा प्रकाशित, अमेरिकी दूतवास द्वारा प्रेषित सूचना केबिल्स से यह खुलासा होता है कि ये दो परिवार ट्यूनीशिया की अर्थव्यवस्था के आधे भाग के या तो खुद मालिक थे, या उस पर उनका नियंत्रण था जबकि उनका अधिकांश धन देश के बाहर लगा था। तात्पर्य यह है कि वाशिंगटन सहमति और मुक्त व्यापार समझौते को लागू करने के लिए थोपी गई नीतियां ही 'भ्रष्टाचार' की असली वजह थीं जो हाल की बगावत का केंद्रीय मुद्दा था। लेकिन बावजूद इसके, मध्यवर्गीय बुद्धिजीवियों के हाथों में नेतृत्व आने के बाद 'भ्रष्टाचार' के इस व्यवस्थाजन्य ढांचागत आधार को इन लोकतंत्र समर्थक आंदोलनों में कभी चिह्नित नहीं किया गया।

'भ्रष्टाचार' को महज एक नैतिक बुराई (जो कि दरअसल वह है भी) के रूप में समझा गया जबकि उन प्रक्रियाओं और अंतराष्ट्रीय संस्थाओं का हवाला तक नहीं दिय गया जो भ्रष्टाचार की असली वजह हैं। यह खास तौर पर विस्मयकारी है कि क्योंकि पक्के तौर पर इस आम बगावत में ट्यूनीशियायी समाज के सभी वर्ग शामिल थे – वह ट्यूनीशियायी मध्यम वर्ग, जिसने क्रांति के ट्यूनिश पहुंचने के बाद उसका नेतृत्व किया, पूरे अरब जगत में संभवत: सबसे ज़्यादा पढ़ा-लिखा और संभ्रांत मध्य वर्ग है तथा ट्रेड यूनियनों का महासंघ भी तानाशाही शासन द्वारा थोपे गये तमाम समझौतों के चलते शायद इलाके का सबसे परिष्कृत महासंघ है।

तानाशाही, मानवाधिकारों और भ्रष्टाचार पर अतिरिक्त जोर देने के पीछे बड़ी संख्या में सभी वर्गों के लोगों को लामबंद करने, अमेरिका द्वारा खड़ी की गई फौज को अलगाव में न पड़ने देने और अमेरिका के लोकतंत्र प्रोत्साहन प्रतिष्ठान को आश्वस्त करने की रणनीति भी हो सकती है। हालांकि यह समझ में आने वाली बात है, लेकिन लगता नहीं कि एक बार अगर लोतांत्रिक प्रक्रिया शुरू हो जाती है तो आर्थिक राष्ट्रवाद और संपत्ति के पुनर्वितरण वाले न्याय की ओर भी संक्रमण शुरू होगा – यानी साम्राज्य और उसकी तानाशाही के खिलाफ़ बगावत। यह तो महज आने वाला समय ही बता सकता है। बस इतना कहा जा सकता है कि अगर ऐसा संक्रमण नयी लोकतांत्रिक शक्तियों की आकांक्षा हो भी तो उसे वाशिंगटन सहमति की संस्थाओं और बैंकरों के यूरोप (जो कि असल में यूरोपीय संघ है) और साथ ही उस घरेलू दमन तंत्र के गुस्से का भी सामना करना होगा जिसका विकास पहले फ्रांसीसी और फ़िर अमेरिकी छत्रछाया में हुआ है। साम्राज्यवाद जिंदा है और ट्यूनीशिया में चरम शक्ति अभी उसके पास ही है।

क्रमशः

तानाशाही, मानवाधिकारों और भ्रष्टाचार पर अतिरिक्त जोर देने के पीछे बड़ी संख्या में सभी वर्गों के लोगों को लामबंद करने, अमेरिका द्वारा खड़ी की गई फौज को अलगाव में न पड़ने देने और अमेरिका के लोकतंत्र प्रोत्साहन प्रतिष्ठान को आश्वस्त करने की रणनीति भी हो सकती है। हालांकि यह समझ में आने वाली बात है, लेकिन लगता नहीं कि एक बार अगर लोतांत्रिक प्रक्रिया शुरू हो जाती है तो आर्थिक राष्ट्रवाद और संपत्ति के पुनर्वितरण वाले न्याय की ओर भी संक्रमण शुरू होगा – यानी साम्राज्य और उसकी तानाशाही के खिलाफ़ बगावत।